मेघ फिर आना
डॉ. ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी 'शैलेश'

मेघ फिर आना

डॉ. ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी 'शैलेश'

सेतु प्रकाशन
अहमदाबाद

मेघ फिर आना

© **डॉ. ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी 'शैलेश'**

प्रथम संस्करण : 2016

प्रतियाँ : 500

मूल्य : Rs. 180/-

प्रकाशक :

सेतु प्रकाशन

9, माधव पार्क, - II, वस्त्राल रोड,

वस्त्राल, अहमदाबाद - 382418

(M) 94276 22862

Email : vijay.tiwari1998@gmail.com

कम्प्यूटर टाइप-सेटिंग :

फागुन ग्राफिक्स

48, पूर्वीनगर सोसायटी,

भाडुआतनगर के पास,

घोडासर केनाल, घोडासर

अहमदाबाद - 380 050

(M) 09255 04661

गीतों का अपना पक्ष : एक गीतधर के माध्यम से

साहित्य महारथी डॉ. श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

'गीत' कविता की एक अन्तःस्फुटित विद्या है, यह तो निर्विवाद है, किन्तु वह कितना 'अन्तःसंवाद' है और कितना 'बहिस्संवाद' इस पर मतभेद या आंशिक विवाद सम्भव है। पाश्चात्य विद्वान जो 'गीत' को 'लिरिक' के अर्थ में ग्रहण करते हैं, वे इसे 'आत्मनिष्ठ, 'अन्तर्वादी' अथवा व्यक्ति विशेष निष्ठ (सब्जेक्टिव) काव्य विद्या के रूप में ही मान्यता देते रहे हैं। अपने यहां संस्कृत के परवर्ती कवि जयदेव की 'गीत गोविन्दम्' कृति एवं हिन्दी के मीरा-सूर के पद, कबीर की पदावली, एवं तुलसी के 'गीतावली' काव्यों को 'पद' की विशिष्ट काव्यशैली में परिगणित किया जाता रहा और बाद में उनको भी 'गीत-काव्य' के विशेष 'रूप' (फार्म) में सम्मिलित कर लिया गया है।

अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे भी काव्य विचारक रहे हैं जो 'गीत' को 'गीति' नाम से पुकारते हुए, उसे 'कविता' की सामान्य श्रेणी से कुछ अलग ही परिलक्षित कराने को उचित समझते रहे। अन्ततः 'गीत' या 'गीति काव्य' कविता की सामान्य श्रेणी से अलग ही है या कविता की 'विद्या-विशेष' ही है-इस पर कुछ विचार कर लेने पर, अन्वय-व्यतिरेक (साम्य-वैषम्य) को निर्धारित करने में कदाचित् अधिक सुविधा सुलभ हो सके।

कविता की मूल-मनःस्थिति तो कवि के अन्तर्जगत में ही विनिर्मित होती है, क्योंकि हर कथन या उक्ति कविता नहीं कही जा सकती, कदाचित इसीलिए आचार्यों ने 'शब्दार्थ-सहितौ' मात्र कहकर, कविता के परिलक्षण से सन्तुष्टि नहीं अनुभव की और उन्हें 'सगुणो', 'निर्दोषौ', 'अलंकृती' एवं 'अनलंकृती पुनः क्वापि' कहकर ही सन्तोष का अनुभव हुआ। बाद में काव्य सम्प्रदायों ने 'रीति', 'वक्रोकित', 'ध्वनि' और 'रस' जैसे विशिष्ट तत्वों का निर्देश किया, जो उनकी दृष्टि में काव्य की 'आत्मा' या 'जीवित' (प्राण) सत्ता है, जिसके बिना सामान्य व्यावहारिक 'वार्ता' अथवा स्थूल 'बहिरंग' वर्णन से 'काव्योक्ति' का अन्तर नहीं समझा जा सकता, तो कविता होने के लिए 'विषयवत्ता' (आब्जेक्टिविटी) की 'आत्मावत्ता' में परिणति आवश्यक प्रतिबन्ध है। यह सम्बन्ध विषय के साथ कवि का 'भावात्मक' अथवा 'रागात्मक' सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर ही सम्भव है।

कविता में कवि की आत्मनिष्ठता, जब काव्य के लिए अपरिहार्य है तो सामान्य कविता वर्ग की भाँति ही 'गीतिकाव्य' और 'गीत विद्या' में भी होना अनिवार्य ही होगा। इसलिए 'गीत' भी कविता ही है; उसे कविता की श्रेणी से सर्वथा अलग-थलग स्थापित करना उचित नहीं होगा। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार - "यदि कविता 'शेष सृष्टि' (कवि से इतर शेष समस्त सृष्टि सत्ता) से हमारा रागात्मक सम्बन्ध ही है, तो 'गीत' भी

शेष सृष्टि के साथ रचनाकार और रचना के माध्यम से 'सहृदय' के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और उसके निर्वाह का एक विशिष्ट माध्यम ही होगा। 'गीत-कविता' और 'गीतेतर' कविता के बीच साम्य (अन्वय) और वैषम्य (अन्तर अथवा व्यतिरेक) के निर्धारण की तुलना बनेगी - इन दोनों पक्षों के बीच ('विषय' अथवा 'वस्तुवत्ता' तथा 'विषयी' अथवा 'आत्म निष्ठता' के बीच) उपस्थित उनकी मात्राओं की परस्पर आनुपानिक स्थिति। गीतेतर काव्य में वस्तु-पक्ष की प्रधानता होती है और गीत काव्य में आत्मवत्ता, किंवा आत्मपक्ष का प्रामुख्य होगा। गीतेतर कवि विषय का अपने रागात्मक स्तर पर अनुभव तो करता है, पर उसकी रागात्मक अभिव्यक्ति में 'विषय' का उपस्थापन ही प्रमुख होगा। विषय पर कवि का जो रागात्मक प्रभाव प्रक्षिप्त होगा, वह स्वयं प्रधान न होकर, विषय वस्तु के प्रतिपादन में सहायक और साधक ही होगा। गीतकार के उपस्थापन की जो गीतात्मक अभिव्यक्ति होगी, उसमें स्वयं विषय की अपेक्षा विषय के प्रति गीतकार की रुचि-अभिरुचि का प्रभाव ही प्रधान होगा। 'कविता' में सहृदय वस्तु के एक रुप का ही अनुभावन-विभावन करेगा, जब कि गीत का सहृदय पाठक, समूची गीत कृति में विषय के माध्यम से उपस्थापित गीतकार की रागात्मकता को एवं साक्षात्कार को ही मूल्य देगा। सामान्य कविता 'विषय' और गीत-कविता गीतकार के अन्तर्जगत को प्रस्तुत करती है। विषय की अपेक्षा, विषय के प्रति गीतकार की निजी मनोभूमि ही अधिक मूल्यवती बन जाय तो वह कविता 'गीत' के विशेष अभिधान की अधिकारिणी होती है।

इस निष्कर्ष पर गीत की छान्दासिक लयवत्ता, भाषा की अन्तःद्रवित संरचना, उसके बिम्ब-विधान, प्रतीक-संयोजन, नादात्मकता-गीतकार के रस आत्मिक द्राव पर निर्भर होती है जो विषय से आगे बढ़कर समग्र रचना को अपने आच्छादक प्रभाव से सम्पुटित कर देता है। विषय के अप्राधान्य के कारण, आज का विषय-प्रधान मानव गीत को चाहे जितना युगानुपयोगी घोषित कर दे, किन्तु गीत विद्या का अपना महत्व है, जो मानव सन्दर्भ में कभी भी अनुपयोगी नहीं सिद्ध किया जा सकता। युग की व्यापक भौतिक विवशताएँ, समयाभाव, विसंगति, शंका, संत्रास और मानसिक तनाव की परिस्थितियाँ, भले ही गीत-सर्जना के लिए कवि को सुविधा प्रशस्त न कर सकें, पर इन अवरोधकों को पार कर, जो गीतकार, गीतानुकूल मानसिकता एवं सर्जकता को अधिगत कर पाने में समर्थ हो सके, उसकी रचना का महत्व असंदिग्ध होगा।

यही कारण है कि छायावादोत्तर युग में 'प्रयोगवाद', 'प्रगतिवाद', 'नयी कविता' एवं साठोत्तरी' उग्र कविता आन्दोलनों के निरन्तर विरोध करने पर भी, गीत की धारा हिन्दी में अजस्र रूप से प्रवाहित चली आ रही है। 'नवगीत' तो गीत की एक सकारात्मक साख है ही, 'अ-गीत' आन्दोलन की रचनाएँ भी कहीं-न-कहीं गीत की नकारात्मक साख को ही व्यंजित व्यक्त करती हैं।

प्रसन्नता का विषय है कि प्रस्तुत काव्य संकलन के प्रणेता डॉ. ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी 'शैलेश' एक भविष्यवान गीतधर्मी कवि हैं। वे 'बैठे-ठाले के कवि' या अन्य द्वार न पाकर, विवशता में जीवन-यापन के निमित्त एक मंचजीवी गायक नहीं, प्रत्युत एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय हेमवती नंदन बहुगुणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय लालगंज, प्रतापगढ़ (उ.प्र.) में समाजशास्त्र के अध्यापन में सेवा रत हैं और अपनी अन्तःप्रेरणा से रचनात्मक 'गीत धर्म' की साधना कर रहे हैं। जहाँ तक मुझे विदित है कि यह उनकी दूसरी पाण्डुलिपि है। गीत-रचना में उनकी रुचि-अभिरुचि तथा अन्तःनिष्ठा है। वे एक कुण्ठामुक्त संघर्षी व्यक्ति हैं। जीवन और प्रकृति-जगत में उनका सहज राग है। निराशा, विघटन, प्रचलनी उग्रता, शिविरवाद और नकारात्मक विद्रोह भाव से उनका कोई लेना-देना नहीं। विलास भोग की न उनकी अन्तःकामना है और न उनकी असुलभता के ऐकान्तिक असन्तोष की मनोरुग्णता ही उन्हें रास आ सकी। एक कर्मनिष्ठ, तेजस्वी और संघर्ष-पथी पूर्ण युवा का वेग यदि उनके शारीरिक अस्तित्व का संचालक है तो एक श्रद्धामयी रचनात्मकता उनके व्यक्तित्व की ऊर्जा स्रोतास्विनी बनकर, गीतों में मुखरमाण हो उठी है। निश्छल टटका मन, सार्थक चिन्तन, सौन्दर्योपघाटनी कल्पना-शीलता, सजल-तरल भाषिकता एवं नैसर्गिक लय-वितान उनके गीतकार का सुस्थ सम्बल बनकर, गीत-पथ पर उसे उन्मेषित कर रहे हैं। इन रचनाओं को साद्यन्त मैंने पढ़ा है और पढ़ने के उपरान्त उसकी जो छाप मेरे सहृदय पाठक-मन पर पड़ी है, उन्हें यदि इस अवसर पर कुछ संकेतित करने का उपक्रम किया जाय तो कदाचित वह अप्रासंगिक अथवा अतिरंजित न होगा।

गीतों की विषय-भूमि अपेक्षाकृत व्यापक है। गीतकार अपने चेतन-अवचेतन मन की कुछ मूलभूत स्पृहाओं तक ही सीमित नहीं है। प्रीति-भाव, सौन्दर्यवृत्ति के निजत्व से आगे बढ़कर, रचनाकार ने अपने गीतों में उन्हें ऐसा रुप देने का प्रयास किया है जो सहृदय-मात्र के तन्तत् भावों को पोषित तो करते ही हैं, तदाधिक उनके वांछित संचार और प्रसार को भी बल देने वाले हैं। गीतकार उन्हें निरी वैयक्तिक वासना का वाहक न बनाकर, मानव जीवन को सर्जनात्मक मूल्य के रुप में प्रतिष्ठित करने का सदाकांक्षी भी है। उसके प्रेम-सौन्दर्य के भाव, जीवन को शक्ति, गति और परिणति देने की दिशा में उन्मुख हैं। गीतकार के लिये प्रेम-सौन्दर्य की अनुभूतियाँ, कर्म-सन्यास और विलास-वृत्ति के लिए न होकर, जीवन को अर्थ-मय और मूल्य-प्रद बनाने की आकांक्षिणी हैं। भाव-पक्ष की हस्ति से कुछ पंक्तियाँ पठनीय हैं -

1. आवो, हम दूरियाँ मिटायें।
पास-पास हम-तुम बैठे हैं,
फिर भी दूर-दूर हैं क्यों मन ?
आवो, हम दूरियाँ मिटाये,
घुल-मिलकर जीलें हम दो छन।

2. कूलों से जब-जब टकराता बहता पानी,
भोली-भाली सरिताएँ बनती तूफानी ।
छू लेती आगे जा ऊँचे तटबन्धों को ।
आवो, फिर जीवन दें टूटे सम्बन्धों को ।।

3. पंक्ति-बद्ध होकर सब पाँखी लौट रहे हैं अपने घर को;
मैं आ गया ? चाहते सुनना कान चिर उसी परिचित स्वर को ।
अंगारों-सा धधके यह मन,
जब सिन्दूरी शाम ढले ।

'नयी कविता', 'साठोत्तरी कविता' एवं 'नवगीत' के चलते, हिन्दी गीतों से जीवन की ऊष्मा, विसंगति और टूटन के बिखरे संवेदनों में, दम तोड़ने लगी थी इन गीतों की आस्थामयी पारस्परिकता में, जैसे कि साँस लेने लगी हो । घर-परिवार और प्रांगण-परिसर के सहज संस्पर्श, इन जैसी पंक्तियों में मानवीयता के पुनर्वासन का बोध लौटाते प्रतीत होते हैं । गीतों के सरल ताप, सम्बन्धों की भूख्र-प्यास को उकेरनेवाली मानवीय अनुभूतियाँ, गीतकार की तरुणिम वाणी में अपना नैसर्गिक व्यक्तित्व जताने को समुत्सुक हैं । संत्रास, विसंगति, शंका, मृत्युभय से अवसाद और निराशा के बीच गीतकार के विश्वासी स्वर टूटती मानवता को पुनर्बोधन करते हैं । गीत की मूल भूमि जीवन की जिन सहज निष्ठाओं में अंकुरित और फलित होती है, गीतकार का मन उनके लिए नये संकल्पों का पुनर्निर्माण मग सृजित करना चाहता है । रोमांस के बासीपन और घिसी-पिटी अनुभूतियों से अलग होकर प्राभविक जीवनानुभूतियों की ख्रोज में फूटे ये गीत सहृदय मन में नयी जीवन-जुड़ाव की ललक को पोसते अनुभव होते हैं । शिल्प और कला के गुम्फन की प्रवृत्ति से मुक्त यह गीतिमा, किसी नये आन्दोलन की घोषणा के साथ अग्रसर होने का भले ही स्वत्व न घोषित करती हो, पर अनुभूतियों का टटकापन, उसके अपनेपन की भावी सम्भावनाओं का संकेत करती है, इसमें दो मत नहीं । गीत, जीवन और उसके सम्बन्धों की मूल्यावस्था होते हैं । वे वही गेय बनाते हैं, जो विश्वस्तता में रच-बस कर, जगह और जीवन को जीने योग्य और मानवीयता के मानवव्य बनाते हैं । 'शैलेष' की यह गीतांजलि इस परिप्रेक्ष्य में, एक सार्थक भूमिका की दिशा में प्रीतिकर प्रस्थान है । वैयक्तिक सम्बन्धों की निष्ठा ही, जीवन की वह सार्थकता है जो मानवीय संस्कृति के अन्त:स्थल का सृजन करती है, उसके स्नायुयों को प्राणवान और स्पन्दनशील बनाती है । इन्हीं विश्वस्त वैयक्तिकताओं के ताने-बाने से सामाजिक संस्कृति का विशालतर पट संग्रथित होता है । हिन्दी गातों में जब से उनका प्राचलनिक (फैशनी) बहिष्कार प्रारंभ हुआ, समूचि गीतिमा ही विश्रृंख्रलित हो उठी है । ऐसे गीतकार ही, हिन्दी गीत-विधा को उसकी अस्मिता प्रत्यभिमान की सुधि दिलाते हैं । 'शैलेश' उन नये गीतकारों में है जो नवीनता और किसी

सर्व-विलग मौलिकता के दम्भ के बिना, स्वयं आत्माभिव्यक्ति के द्वार खटखटा रहे हैं, जिनका अन्तर्मन गीतिमा है, जो अन्तस्तरंगिमा में स्वयं गुनगुना उठते हैं।

आज विघटन, संक्रमण, कुण्ठा और कुछ स्वयंमागत तथा अधिकता बहिरारोषित विसंगति बोध के चलते, मानव के सहज-तरल मानस का जो विखंडित रुप प्रस्तुत हो रहा है, वह प्रकट रुप में चाहे जितना भी सुतर्क्य हो, पर उसे मानव की नितान्त नियति मानकर चलना, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता। प्रगतिवाद ने अब तक के समूचे मानव इतिहास पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया। 'प्रयोगवाद' ने प्रचलित और अभ्यस्त पथों के तिरस्कार के साथ, नयी राहों के अन्वेषण को एक व्यक्तिवादी प्रचलन को ही, कवित्व और काव्यत्व घोषित किया। 'नयी कविता' ने चौकाने और प्रहार करने को ही कवि-कर्म का पर्याय सिद्ध किया। 'साठोत्तरी कविता' असन्तोष और अन्तर्कुण्ठाओं के गलियारों में ही कविता की पहचान स्थापित की। 'नवगीत' ने गीत को प्रासंगिक बनाने की धुन में गेयता और अगेयता की मनोभूमियों के अन्तर को ही नकार दिया। गीत का निजत्व की घपले में पड़ गया। आज हिन्दी काव्य-मंचों पर 'नवगीत' के चलते, चमत्कार-मुखी, ग़ज़लों और कवित्त-सवैयों की बाढ़ आ गयी है। हास्य और व्यंग्य की मनोरंजिकी भंगिमाओं ने, एक अलग प्रकार के छिछले श्रोता-वर्ग का प्राधान्य सम्भव कर दिया है। ऐसी दशा में, हिन्दी-गीत-धारा के सामने अनेक प्रश्न-चिह्न लग गये हैं। फिल्मी गीतों को उनका उत्तर तो देना ही होगा तथा उन्हें अपनी छीजती अस्मिता को पुनस्सृजित करना होगा।

जहाँ तक गीतकार 'शैलेश' का सन्दर्भ है वह उसी अस्मिता की तलाश का एक नया स्वर है। प्रसन्नता की बात है कि 'शैलेश' का गीतकार जीवन-मूल्यों और मानवीय मानों से टूटा हुआ स्वर नहीं है। उसने अपने व्यक्ति-हृदय के भीतर जहाँ प्रेम और सौन्दर्य के सर्जक मूल्यों को सहेजने का प्रयास किया है, वहीं पारिवारिक, सामाजिक, सामूहिक एवं शास्त्रीय मूल्यों के साथ, मानवतावादी मूल्यों को भी अपनी शैली में अपनाया है, पर 'शैलेश' किसी पर-लोक या स्वर्ग आदि की कामना नहीं रखते न ऐसी कोई प्रतिबद्धता ही दिखाते हैं। उनकी रुचि या आस्था, जिजीविषा, गति और पथ प्रचलन को महत्व देती है।

"मैं धरा का हूँ धरा की धूल को पहचानता हूँ,
गहनतम में भी जला विश्वास के नन्हे दिये को,
रात कितनी शेष तारे देखकर अनुमानता हूँ।

वह प्रकृति के समरस और ऋतु की रंगिमा से अपने अस्तित्व को जोड़े रखना चाहता है, क्योंकि मुस्कान को उससे भी आगे बढ़कर जीवन की सार्थकता बनाए रखना उसका लक्ष्य है।

“मधुऋतु आयी, फिर मुस्काई खुली धूप आँगन में ।
रंग-बिरंगे स्वप्न मंचलते अँगड़ाई ले मन में ।।”

वह प्रकृति को केवल अपने रंग में ही नहीं रंगता, वरन् अपने को भी प्रकृति के रंग में सराबोर करने का अर्थ समझता है। नागफनी, बबूल, आड़ और निर्जन में सीमित न रहकर, प्रकृति की रंगमयी सुषमा उसे उल्लास और आत्मबल प्रदान करती है । यह सब जिस भाषा में अभिव्यक्त होता है, वह भाषा भी उसकी पुस्तकों और कोशों की कमाई नहीं है, वरन् उसे उसने अपनी अनुभूतियों और उनकी अभिव्यक्तियों में ही संरचित किया है। भाषा उसके अभिव्यंजन में कहीं बाधा नहीं प्रतीत होती, प्रगति-प्रयोगवादियों की विचार-गठित या बुद्धि से गढ़ी कृत्रिम विन्यास नहीं अनुभूति-संवेदनाओं से उच्छित होकर, बह पड़ी धारा है, जहाँ प्रयास और श्रम की अपेक्षा, अन्त-द्रुति की सहज छलकती प्रतीत होती है। जीवन के दैनन्दिन प्रयोग में आने वाले ऊष्म शब्द, लोक-संस्पर्श से सिक्त अभ्युक्तियाँ तथा भाव-बोधक पद शैय्या एक-दूसरे से समरस होकर गीतों को एक स्वरुप देते हैं । भाषा भटकाव और अमूर्तन में मूर्त्तता न भटककर मूर्त्तता के उज्जागरण में ही प्रवृत्त हुई है, इसलिए बिम्ब सुथरे और सहज रुप में प्रतिफलित हुए हैं। जीवन की रचनात्मक ऊष्मा से भटकाव ही, गीतिमा का निर्वासन तथा जुड़ाव ही गीतिमा का आत्म-सृजन है। सन् 1940 के बाद के वैताण्डिक वादों के चलते विश्व-कविता का जो भी वैविध्य, हिन्दी-काव्य में समाविष्ट हुआ है, गीत और गीतात्मकता का बड़ा अहित हुआ है। गीत किसी भी भाषा के आन्तर विकास और अन्तःक्षमता का प्रतिमान भी कहा जा सकता है । कविता में गीत जितना तन्मयीभूत होता है, कविता उतनी ही संजीवित होती है; कविता से गीत-तत्व जितना ही सुदूर होता है, कविता उतनी ही मुमूर्ष और प्रभावहीन होती जाती है। इसलिए किसी भी साहित्यधर्मिता का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने बीच से गीत को मरने न दे ।

हिन्दी कविता में गीत की अवमानना से चिन्तित होना स्वाभाविक है। दुर्भाग्य है कि हिन्दी का समीक्षा लोक आज स्वयं शिविरों और वादों में विभक्त होकर दिशाहारी हो उठा है। उसकी समग्रता की दृष्टि धुँधलाती जा रही है। अलग-अलग विद्याएँ अपने अलग-अलग समीक्षक गढ़ रही हैं । जिनका व्यवसाय निर्धारित हो गया है । जिन्होंने समय-समय पर समीक्षा संगम के नाम पर मेले जुटाये और विविध रचनात्मक तथा अधिवचन के साथ, विसर्जित हो जायँ। जिनसे गीत-विद्या में क्रान्ति की कुछ दशाएँ थीं, पर जीवन के अंतिम दिनों में वे भी नवधारा को समर्पित हो गए। सहज गीतिका आज भी समर्पित गीत सर्जकों के हृदय में प्रवहमान है। ऐसी दशा में यह गीत-संग्रह इस विषय का संकेत देता है कि गीत स्वयं अपनी अस्मिता का पुनरुद्धार करेगा ।

शेषपुरा, (बस स्टेशन के पीछे) जौनपुर, उत्तर प्रदेश

जैसा मैंने देखा-समझा.......

डॉ. अंशुमाली सूर्य नारायण द्विवेदी

कविता रचनाकार की आत्मा की परछाइयाँ हैं, जिन्हें उसकी परावाणी जाने-अनजाने अत्यन्त समाधिस्थ क्षणों में गुनगुनाती हुई आकार लेती है। न वह सायास होती है और न सावकाश क्षणों में ही। अपनी अभिव्यक्ति के क्षणों में कविता शारदा की प्रासदिक अनुकम्पा की ही सुपरिणति होती है ऐसी भारतीय समीक्षकों की धारणा रही हैं। डॉ. शैलेश की रचना के उषाकाल से लेकर आजतक के सृजन का मूक साक्षी मैं आरम्भ से ही इनकी वैखरी को विस्मय एवं हर्ष से पढ़ता देखता रहा हूँ। शिशु प्रयास से स्वच्छ, सरल एवं सहज किन्तु प्रौढ़ वाणी विन्यास तक को पढ़ने पर उसमें निहित कथ्य को पाने पर आशंसा की मूक वाणी में केवल समर्थित करता आया हूँ। मैं शैलेश का नितान्त अपना रहा हूँ। अतएव बार-बार उनके कहने पर उनकी रचनाओं की समीक्षा के लिए स्वयं आना ठीक नहीं समझता था। यद्यपि आज ऐसा प्रचलन विरल नहीं। फिर भी उनके मन को तोड़ना ठीक न समझकर 'मेघ फिर आना' तक के उनके प्रयासों पर आज मुखर होने की इच्छा होती है।

रचना शैलेश का व्यवसाय कभी न था। वह भी विशुद्ध एवं सहज अभिव्यक्ति, ऐसे क्षणों की जो वे जैसा चाहें रचनाकार से लिखवा लेते हैं। वास्तव में क्षणों के पटल पर लिखे अक्षरों को मन की आँखों से देखा जाता है और माध्यम चाहे पत्थर से, चित्रपट से, संगीत-साज हो या शब्द उनके पटल पर उतार लेने की आकुल ही सृजन को मुख्य आकार देती है। कब किस क्षण में भाव की किन तरंगों से जुड़ा मन, कैसे-कैसे चित्र रचता है वह स्वयं रचनाकार के लिए भी सृजन के पश्चात् विस्मयावह सत्य होता हैं। इन अर्थों में आज भी रचनाकार मंत्रद्रष्टा ऋषि की पंक्ति से अलग नहीं हुआ है। वह वैसा ही उरेहने को बाध्य होता है जैसा उसके हृदय पटल पर उभरता है। प्रज्ञा का सहारा लेकर उस दृश्य सत्य को अक्षरों में बाँधने का काम भी अदृष्ट प्रेरणा का ही होता है। स्वयं रचनाकार मात्र द्रष्टा ही रह जाता है पर दृश्यांकन को, वैखरी में उतारने के कारण उसे वे साफ स्रष्टा की भूमिका सम्मान तो दे ही जाते हैं, यद्यपि वह सारा कुछ उस क्षण सामाम्नाय की सम्पत्ति होती है। डॉ. शैलेश के लिए भी यही सत्य रहा है और है।

पहले पहल किशोर शैलेश की कविताओं की अभिव्यक्ति न केवल अप्रत्याशित अपितु निश्चित ही चौकानेवाली थी जिन्हीं पढ़कर मुझे लगा कि यह और यदि लिखे तो

अप्रतिम काव्य रचनाएँ दे सकेगा। जैसे एक कविता -

चारो डैन खोल
नाच रहा पंखा
जीविता पंखा
X X X
गुलाम बिजली का,
अपनों का
आदमी का
X X X
आदमी यानी पंखा
जो हरदम नाचता है
मौन के समुद्र तक
डैने खोल (शीर्षक है, मशीनी भूत)

आदमी की गतिविधि का इससे स्वाभाविक चित्रण क्या हो सकता है कि वह बिजली के पंखे जैसा ही नाच रहा है। इशारे पर मौत के समुद्र तक। नए अपमान, नई बात कोई अनुकरण नहीं कोई बनावट नहीं, सीधी बात; अपनी बात, बेलाग बात या कभी-कभी अपनी अन्तर्वेदना को जब आकार देता अपने द्वारा उद्भावित उपमान पर, उधार लिए उपमानों या अतीत में जूठे उपमानों पर नहीं जैसे :

घेरे हुए हैं चारो दिशाओं को
प्रेतीली परछाइयाँ
हवा-गरम है।
X X X
पद्मा मेघना की कछारों से
समुद्री लहरों से उठ रही है
आँधी
हरहरा रहा है
खूनी बवंडर
अभी कशमकश में हूँ
छोपे हुए दिशाओं को
तपस्वियों के यश का धुँआ
ओढ़ रहा है - शायद
जिसे आकाश।

कवि समाज में जैसा पाता है वह दर्पण की भाँति उकेर देता है। शब्दों के दायरे में जो अमिट हो जाते हैं पर होते हैं नितान्त सहज नितान्त स्वाभाविक एवं कविता किशोर शैलेश की आग ने भूखे-नंगे मानव की :

बन्दर
दर बदर
घूमता
उछलता
छलांग लगाता है
रोटी के टुकड़े के लिए
कुत्तों से छीनकर
अपने लिए लाता है
छिपे छिपे
खाता है
(और आज का मानव)......
जीवन के कोने में

आग ने नर की बानर से रोटी के टुकड़ों की छीना-झपटी एवं अत्यन्त दीन होकर उसे खाने का प्रयत्न कितना विचित्र किन्तु सहज है। आज के मानव की दशा का चित्र। किशोर मन ने उसे बिना किसी लाग-लपेट के कागज पर उतार दिया है।

मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव तो आते हैं पर कभी-कभी उतार के क्षणों में वह कितनी भयानक निराशा का सामना करता है उसका एक चित्र :

जहाँ कहीं भी
जितनी भी दूर
दृष्टि जाती है
सहायता के नाम पर
सपाट मैदान
कोई ठूठा पेड़ भी नहीं दिखता
जिसकी छाया लेकर
अपनी उखड़ती साँसों को
दम दे सकूँ।

अध्ययन काल की समाप्ति एवं अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में उतरते ही जन-चेतना, राष्ट्रीय प्रकृति एवं राष्ट्र भावना के साथ देश की प्रकृति एवं प्रवृत्ति शैलेश के मन एवं मस्तिष्क से आ जुड़े। अब वे प्रायः जनभावना राष्ट्र चिन्ता एवं प्रकृति में ग्रामीण उपादानों से अपने को जोड़कर दिखने परखने में रुचि लेने लगे। अतएव प्रौढ़ शैलेश के काव्य की दिशा में स्वभावतः कुछ परिवर्तन आया। इस अवधि विशेष की कविता उनकी दीवार आदि कविताओं में अभिव्यक्त हो पायी। कहा भी "हमें तो हमारा हिन्दुस्तान चाहिए" जैसे लोकप्रिय रचनाओं का प्रश्रय। ऐसी रचनाओं ने जनता एवं कवि जगत् की भी पर्याप्त आशंसा पाने में सफल रहीं। इस बीच आकाशवाणी में कई बार उन्हें अपनी रचनाओं को जनता से जुड़ने का एवं कवि सम्मेलन में भी भाग लेने का अवसर मिला जिनसे इनकी रचनाओं में नया निखार आया। प्रस्तुत रचना उनकी कविताओं की कदाचित तीसरी खेप है जहाँ अछूत भाव एवं नए उपमानों ने प्रश्रय पाया। अब रचनाओं में प्रायः छोटे में बदले शीर्षक के रूप में सामने आने लगे जैसे -

"काटने लगीं चीटियाँ चिकोटी......
"आगे बढ़े किन्तु......
"देना हो तो दे दो मुझको......
"लगती तेरी छाया अपनी नही पराए सी......
"भूलू किसे किसे अपनाऊँ.......

इन रचनाओं में हृदय की स्पर्शी संवेदनाओं का उतार है, ज्वाला है और सबसे अधिक.... प्राणों की उष्मा जो मानव मन को छूती है गहराई से छूती है। साथ ही गाँवों की धरती से जुड़े हुए उनके अत्यन्त मर्मस्पर्शी जनचेतना एवं प्रकृति से सम्बद्ध भाव इतने सहज और प्रभावोत्पादक हैं जो पढ़ने वाले को नितान्त अपने अनुभव से भाते हैं। यहाँ शैलेश ने कविताओं को आस्वाद, अनुभूति एवं मानवीय आत्मा से सीधा जुड़कर, आनन्द से भी जोड़ा है, जो कि कविता का अन्तिम एवं परम लक्ष्य है।

29, ब्रह्मानन्द नगर कोलोनी, दुर्गाकुण्ड
वाराणसी - 221010

•

जीवन - राग के गीत : मेघ फिर आना

डॉ. रामसुधार सिंह

हिन्दी गीतिकाव्य अपने वैशिष्ट्य के साथ परिवर्तित होते हुए निरन्तर विकसनशील रहा है। भक्तिकालीन गीतों में संगीत की अनिवार्यता थी। संगीत के बाद अनुभूति की गहनता अपेक्षित होती थी। यदि कहीं वस्तुनिष्ठता होती भी थी तो उसे संग्रथित करनेवाला अनुभूति का दृढ़ सूत्र हुआ करता था। छायावाद और उसके बाद के गीतकारों ने गेयता को गीतिकाव्य की प्रथम शर्त मानते हुए वैयक्तिकता को इसका आधार बनाया। धीरे-धीरे नितान्त निजी अनुभूतियों और सन्दर्भों से गीत को सजाया जाने लगा। नवगीतों में आकर यह सन्दर्भ फिर बदला और शब्दों के नाद से आगे बढ़कर शब्द की ध्वनि में निहित लय में गीत ढाले जाने लगे। वैयक्तिकता फिर निजी सन्दर्भों से हटकर सामाजिक संस्कारों या जातीय संस्कारों की वैयक्तिकता बन गई। अनुभूति की जगह संवेदना का महत्व बढ़ गया। गीत के लिए संवेदना अनिवार्य है। गीत में संवेदना अवश्य होनी चाहिए अर्थात् भाव के साथ समझदारी होनी चाहिए। गेयता के साथ मूल्य भी नवगीत के अनिवार्य तत्व हैं। आज का गीतकार कल्पना के छायाचित्रों से छूटकर अपने जीवन के सुख-दुख के माध्यम से जीवन की समग्रता को व्यक्त करने लगा है।

डॉ. ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी 'शैलेश' गीत, मुक्त छन्द, गजल-सभी विद्याओं के सिद्धहस्त कवि हैं और इन विद्याओं में उन्होंने एक संजीदा छाप छोड़ी है। 'मेघ फिर आना' उनके गीतों का संकलन है, जिसमें गीतों की संवेदना, अनुभूति, विचार, वस्तुनिष्ठता तथा शिल्पगत सजगता विद्यमान है। शैलेश जी में कविता के मर्म को पकडने की विलक्षण प्रतिभा है। संरचना और कथ्य की आत्मीयता उनकी एक महत्तम उपलब्धि है। उनकी भाषा की अर्थसत्ता अपने को कथ्य के अन्दर रूपायित करती है। कथ्य परिवर्तन से भाषा अपने आप नया आकार ग्रहण कर लेती है। शैलेश जी की गीतधारा छायावादी गीतों से लेकर नवगीत तक की यात्रा करती हुई लगती है। इन गीतों में एक ओर प्रेम और विरह की अनुभूतियाँ, व्यक्तिनिष्ठता, रहस्यात्मकता है, तो दूसरी ओर एक गहन आस्था और विश्वास का स्तर है, जो अगली पीढ़ी को राष्ट्रभक्ति और मानव मूल्यों की प्रेरणा देता है।

शैलेश जी के प्रेमपरक गीतों के माध्यम से उनके भावुक और भावप्रवण-हृदय को गहराई के साथ महसूस किया जा सकता है। इस तरह की कविताएँ

सघन यादों के जंगल के गुजरने एवं प्रेमजनित मन:स्थितियों को गहराई से समझने का बोध कराती हैं । उदाहरण के लिए - 'नेह तुमसे ही किया', 'और बढ़ गई चुभन', 'जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ' 'मत रोक पवन पग मेरा' जैसी कविताओं को देखा जा सकता है । प्रिय के पास होने से कवि को अकथनीय सुख की अनुभूति होती है, उसके भीतर कल-कल स्वर में अन्तः सलिला बहने लगती है, उसे एक आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे उसे गिरि-शिखरों को नाप लेने का विश्वास आ जाता है -

अकथनीय सुख मिलता मुझको
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ ।

X X X

टूटे पावों से भी चलने का दृढ़ निश्चय आज हो गया
नाप सकूँगा गिरि शिखरों को कुछ ऐसा विश्वास हो गया
इन्द्रधनुष के सप्तरंग से विहँसित आमन्त्रण पाता हूँ ।
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ ।

प्रिय का अभाव उसके जीवन को सूना बना देता है । प्रिय ही उसका जीवन-धन है, जीवन उसी प्रिय पर अर्पण है, किन्तु उसका न होना गहन संताप पैदा करता है -

तुम बिन मेरे प्रियतम सूना जीवन है
बिन बादल बरसे ही भींगा ये मन है ।

छायावादोत्तर गीतों में वैयक्तिकता प्रधान हुआ करती थी । बाद के गीतकारों ने वैयक्तिकता को लोक-सन्दर्भ से संयुक्त कर उसे एक नया आधार प्रदान किया हैं । शैलेश की वैयक्तिकता कहीं गहन अनुभूति के साथ व्यक्त हुई है, तो कहीं लोक-सन्दर्भ से जुड़कर अर्थवान बन गई है । 'किस पथ पर चलकर', 'आगे बढ़े किन्तु', 'मुझको बीती बात न भूली', 'ठुकराओ मत पाँवों से', 'अभिलाषा' आदि गीतों में गीतकार की वैयक्तिक पीड़ा, जीवन का दाह और सघन स्मृतियाँ उभरी हैं । कवि ने पीड़ा को अपनी थाती बना लिया है, लेकिन वह पीड़ा उसे जीने की ताकत भी देती है -

अंधकार से आवृत धरती पर
पग-पग रखकर चलता हूँ
मिली वंचनाएँ जीवन में

भूखी सदा रही अभिलाषा,
जब भी पूछा राह किसी से
सबने दी नूतन परिभाषा,
अरे हिमालय मैं भी नितप्रति
तुझ जैसा ही तो गलता हूँ ।

शैलेश की कविता में कल्पना और यथार्थ दोनों का संतुलित अनुपात है। प्रकृति और मनुष्य दोनों से उन्होंने जीवन-राग का संचय किया है । प्रातःकालीन सूर्योदय के साथ पूरी धरती पर एक नया जीवन फैल जाता है, धरती का भाग्य जग जाता है, पत्ते तालियाँ बजाने लगते हैं, हर कली गाने लगती है । 'ये हवा कैसी चली' गीत में इस सुहावने दृश्य के कई बिम्ब बहुत ही आकर्षक हैं । सरसो के फूल खिले हैं । उनकी बालियाँ ऐसे मिलती हैं, जैसे अपनी बाहों में घट थामें नायिकाएँ पनघट की ओर जा रही हैं -

फूल सरसो के खिले
बालियाँ मिलती गले
बाँह में घट थाम अपने
नायिका पनघट चली ।

प्रकृति का यह सहज सौन्दर्य कवि को गाँवों की ओर ले जाता है । शहरी विभीषिका में इसका अभाव हो गया है । आज के गाँव भी शहर की चपेट में आ गये हैं, फिर भी कवि को सोते से जागी गोरैया की फुदकन, खूँटे पर पगुराती गाय, धूप में नहा उठी निमिया की पाती का सौन्दर्य आकर्षित करता है, सोंधी माटी की महक उसे खींचती है -

सोंधी माटी मँहक रही है हरी-भरी अंगनाई की
याद दिलाती हर मानव को बचपन के अँगड़ाई की
छिपा रही है अब भी अपने आँचल में ममता की थाती ।
भोर हुई माटी के घर में ऊँचे स्वर में जगी प्रभाती ।।

शहर के बहते फैलाव ने गाँव के इस सौन्दर्य को निगल लिया है । यहाँ सारी रीति उल्टी हो गई है, अमिया की शाखें कट गई हैं, इसकी जगह यूक्लिप्टस के पेड़ झूम रहे हैं । कुल मिलाकर इसके सांस-सांस में जहर घुल गया है । प्रकृति के साथ किये गये इस खिलवाड़ ने मानव को संकट में डाल

दिया है । पर्यावरण-प्रदूषण फैलता जा रहा है । अतिवृष्टि-अनावृष्टि की विभीषिका संहार कर रही है, फिर भी मनुष्य चेत नहीं रहा है -

तारकोल की जलती सड़कें सेंक रही हैं तलवे,
कुत्तों से ले होड़ हड्डियाँ टाल रही हैं मलवे,
हाथ पसारे गली-गली में ठोकर खाती है तरुणाई...... ।

कवि जीवन के सौन्दर्य को सहज रुप में आत्मसात् करना चाहता है, इसी कारण वह बचपन में लौट जाने की कल्पना करता है । कवि को शहर के पढ़े-लिखे लोगों, किन्तु बनावटी जीवन जीने वाले लोगों की तुलना में वनों और पर्वतों में रहनेवाले आदिवासी अधिक भाते हैं । विपन्नता में रहते हुए भी इनके पास पर्याप्त धैर्य है । ये नित्यप्रति श्रम करते हुए जीवन बिताते हैं, अपने वृद्ध माता-पिता के सबल सहारे हैं । गीतकार इन्हें अपना बन्धु कहता है -

हरिजन, गिरिजन कुछ भी कह लो
है सब कुछ स्वीकार
मानव हैं, यह स्पष्ट है
इनको भी दो प्यार
मत अपमानित करो इन्हें
ये बन्धु हमारे हैं ।

कथ्य के अनुरूप कवि ने भाषा को सहज एवं बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है । बिम्ब, लोकोक्तियों एवं मुहावरों से संपृक्त होकर भाषा में जीवन्तता आ गई है । किसी कवि के भाषिक प्रयोग व शाब्दिक चयन के आधार पर कवि के संस्कार और मानसिकता का पता चलता है । गीतों के लिए कृत्रिम नहीं, बल्कि सर्जनात्मक भाषा आवश्यक शर्त होती है । कवि शैलेश के पास भाषा की वह सर्जनात्मक प्रतिभा मौजूद है । इस संग्रह के लिए मैं शैलेश जी को ढेर सारी बधाई देता हूँ ।

नवरचना कान्वेन्ट स्कूल परिसर
गिलट बाजार, वाराणसी

●

अनुक्रम

1.	शारदे वर दे !!	20
2.	नेह तुमसे ही किया	21
3.	फैल गया है......	22
4.	दृष्टि फिर रही है ललचायी	23
5.	सूखे पत्ते झरे	24
6.	और बढ़ गयी चुभन......	25
7.	जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ......	26
8.	गाँव का गीत	27
9.	काटने लगी चीटियाँ चिकोटी	28
10.	जाना तो होगा ही दर्पण के सामने	29
11.	शहर	30
12.	तुम चलो	31
13.	ढोना होगा तुमको......	33
14.	आओ हम अपने को खोजें	34
15.	किस पथ चलकर	35
16.	नव निर्माण करें	37
17.	प्रिय बता दो	38
18.	चेतना के बिम्ब	39
19.	रात भींगती दिन जलता है......	40
20.	मैं सहर्ष स्वीकार करुँगा	41
21.	आगे बढ़े किन्तु	43
22.	यह कैसी बरसात	44
23.	मुझको बीती बात न भूली	45
24.	व्यथा बांसुरी गूंजी	46
25.	सोचो	48
26.	ठुकराओ मत पावों से	49

27.	भूलूँ किसे ? किसे अपनाऊँ?	51
28.	आ जाते यदि मेरे बचपन	53
29.	मेरा परिचय पा जाओगे	55
30.	मेघ फिर आना	56
31.	अभिलाषा	58
32.	जब निराश मन होता मेरा	59
33.	आओ मिलकर नीड़ बनाएँ	60
34.	गन्ध बनकर साँस में बस जाएँगें	61
35.	मत रोक पवन पग मेरा	62
36.	देना हो तो दे दो मुझको	63
37.	उलझ गयी जीवन की डोरी	64
38.	क्यों विश्वास नहीं कर पाए	65
39.	पीड़ाएँ पीकर पलता हूँ	66
40.	साध बहुत थी	67
41.	वाणी मौन भले हो जाए	68
42.	नहीं पराए से अपनो से	69
43.	तुम बिन	70
44.	ये हवा कैसी चली	71
45.	जागीं स्मृति में बीती घड़ियाँ	72
46.	बन्धु हमारे हैं	74
47.	आना मेरे पास	75
48.	सो लेने दो मुझको जी भर	77
49.	हब सब मिलें, एक हो जाएँ	78
50.	ओढ़ें कितनी मर्यादाएँ	79
51.	आज बरसा मेह	81

शारदे वर दे !!

धवल वसने, शारदे वर दे !
द्वेष दारिद दूर कर माँ स्नेह की सरिता बहाकर
मनुज गति ले तीव्रता से प्रगति का शुभ पंथ पाकर
द्वन्द्व की आँधी शमित कर कलुष तम हर दे ।

स्वार्थपरता दूर हो सद्भावना संयम बढ़े
कीर्ति की कोमल लता अवलम्ब पा नभ पर चढ़े
धरणि के धूमिल कणों को ज्योति से भर दे ।

सुप्त जन मन जाग जाये स्पर्श पा रवि रश्मियों का
वेग द्विगुणित हो उपेक्षित हो रही लघु उर्मियों का
जागरण सन्देश फैले नित्य नव स्वर दे ।

•

नेह तुमसे ही किया

तोड़कर तृण इस जगत से नेह तुमसे ही किया
है कहाँ का न्याय खीचे बीच में हो हाशिया।

जब कभी मेरे बढ़े पग माँगने अवलम्ब तुमसे
पुष्प बिखरे साधना के छलछलाये स्वेद श्रम से
इति न अब भी दीखती है मार्ग में कंटक उगे हैं
भर रहा फुफकार बारम्बार क्रोधित कालिया।

आगमन-प्रत्यागमन से उड़ चली है धूल पथ की
सुन न पाये कान मेरे गर्जना स्वर दिव्य रथ की
आँधियों के तीव्र झोकों से सदा टकरा रहा हूँ
जल रहा हूँ जग रहा हूँ बन प्रतीक्षा का दिया।

भाव की ले लेखनी अरुणिमा धवल हृद्-पत्र पर
अश्रु की मसि बोर लिखते विनय जगकर रातभर
दूर नगरी की सड़क-गलियाँ सभी कुछ नापकर
लौट आया पत्र लेकर घूम घर-घर डाकिया।

•

फैल गया है......

नागिन काट छिपी झाड़ी में देती नहीं लहर
फैल गया है धीरे-धीरे सांस-सांस में जहर।

श्याम वर्ण का शोणित होकर पोर-पोर को छेद रहा है
कैसी उल्टी रीत हो गई पानी पत्थर भेद रहा है
ऐंठ रही है सभी शिराएँ परेशान है शहर।
फैल गया.......

युक्लिप्टस के पेड़ झूमते कटी शाख़ अमिया की
नहीं गुड़ाई देख़ रेख़ कुछ ख़ेती है बनिया की
और अँधेरी रात ढा रही कदम-कदम पर कहर।
फैल गया......

आँख़े बन्द हाथ निश्चल है बिछड़ा जीवन सम्बल
विश्वासों की थाती बिख़री सड़क लीलती दल-दल
दूर पहरुए चिल्लाते हैं भूल गयी है डहर।
फैल गया......

तार-तार विस्तर फैला है ख़ाट के पाए टूटे
वैद बेचारा भी क्या करता जब परमेश्वर रुठे
समय हाथ से निकला जाता हुयी जा रही गहर।
फैल गया......

•

दृष्टि फिर रही है ललचायी

सावन गरजा भादो बरसा
सूखी दूब नहीं हरियाली
दृष्टि फिर रही है ललचायी।

कल कंचन था उगा जहाँ पर आज वहाँ ऊसर है,
शिव कानन्दी गगन निहारे हाथ-पाँव दूबर है,
बीच तलैया श्वेत कुमुदिनी होकर प्राण हीन मुरझाई।

तारकोल की जलती सड़कें सेंक रही हैं तलवे,
कुत्तों से ले होड़ हड्डियाँ टाल रही हैं मलवे,
हाथ पसारे गली-गली में ठोकर खाती है तरुणाई......

चोंच खोलकर चूँजे माँगें गौरेया से दाना
कब तक आँसू से गीले हम करते रहे बहाना
भूखा भाड़ चाहता ईंधन पत्तों से क्या हो भरपाई......

•

सूखे पत्ते झरे

शाखाओं से सूखे पत्ते खड़-खड़ करते झरे
सम्प्रेषित कर अलिखित गाथा यत्र-तत्र जा परे

शायद सबकी नियति यही है थिर क्या कोई रहा कहीं है ?
गिरि के खण्ड अनेक हो गए जगह-जगह जा धँसी मही है,
लाल ! खड़े हो क्यों तुम निश्चल नैनों में जल भरे
शाखाओं से सूखे...... यत्र-तत्र जा परे।

अग्नि सरिस हिम गला धधककर अंधकार बन ज्योति जग उठी
बंटवारे में जल-थल-नभ के
उठा लहू की धार बह उठी
पाँव मृत्यु के भला किसी के टारे से क्या टरे......
शाखाओं से सूखे...... यत्र-तत्र जा परे।

उर्ध्व परिधि के लंघन में बस दृष्टि मात्र रहती अनुगामी
मुक्ति घोषणा पर भी बन्दी हो पाए क्या बहुआयामी
कैसे शेष रहे कृश काया ठाठ-ठाठ सब जरे......
शाखाओं से सूखे...... यत्र-तत्र जा परे।

•

और बढ़ गयी चुभन......

सहला गयी सुप्त काया को एक अनछुई छुवन
धीरे-धीरे भींगे मन में और बढ़ गयी चुभन।

पोखर के पानी में लहलह जल कुम्भी उतराई
दिया झँकोरा मस्त पवन ने उछल तीर पर आयी
धूप सेंक कर रोज सबेरे आँज रही है अगन।
सहला गयी.......

पगडण्डी से पूछ-पूछ कर राम गए लंका को
अपने घर से बहुत दूर जा पीटे जय डंका को
मौन जटायू ने आँखों से देखा सीता-हरन।
सहला गयी......

कोई बतियाना चाहे पर कैसे क्या कह बोले
अपनापन दिखलाये पल-पल आस-पास ही डोले
डोरी लोक लाज की बाँधे धरती हुई मगन।
सहला गयी......

छोटे से आँचल में सब कुछ लालच है भरने की
पथराये सीने से लगकर है न ललक मरने की
दुलराया है आज किसी ने बाहों में ले गगन।
सहला गयी......

•

जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ......

अकथनीय सुख मिलता मुझको
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ।

पाटल की-सी गन्ध चतुर्दिक आंगन में मेरे मड़राती
स्नेहसिक्त हो धीरे-धीरे जगमग करती है सँझवाती
भादों की बहती सरिता सी भूरि भाग्य पर इठलाता हूँ।
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ।

कल-कल रव कर अंत:सलिला मेरे अन्तर में है बहती
हैं ढहते उन्नत कगार फिर मध्य विनिर्मित खाई पटती
अतल गर्भ से पग उभार कर धरती के ऊपर आता हूँ।
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ।

टूटे पावों से भी चलने का दृढ़ निश्चय आज हो गया
नाप सकूँगा गिरि शिहरों को कुछ ऐसा विश्वास हो गया
इन्द्रधनुष के सप्तरंग से विहँसित आमंत्रण पाता हूँ।
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ।

श्रम सींकर को छूकर बहती वायु दूर तक लहराती है
वैभव पारिजात पुष्पों का कोने-कोने बिखराती है
हृदय कमल की खिली पंखुड़ी मधुरिम क्षितिज पार जाता हूँ।
जब-जब पास तुम्हें पाता हूँ।

•

गाँव का गीत

भोर हुई माटी के घर से ऊँचे स्वर में जगी प्रभाती
सोते से जागी गोरैया फुदक-फुदक कर शोर मचाती ।

खूँटे पर पगुराती गैया द्वार ताकती है पल-पल
बाँधे सिर पर लाल पगरिया चला कृषक भी लेकर हल
लाल धूप में नहा उठी है हरी-हरी निमिया की पाती ।
भोर हुई माटी के घर से......

दिन की तेजी बढ़ी बेग से सूरज फैलाता चादर
त्राहि-त्राहि कर उठे फूल सब राही बिलमा बट के तर
थाले की मुस्काती तुलसी धूप-धमक पा झुलसी जाती ।
भोर हुई माटी के घर से......

नदी किनारे बैठे बगुले ध्यान मग्न योगी बनकर
उछल रही मनचली मछलियाँ बीच धार में बन-ठन कर
बँसवारी की छिछली छाया खिल-खिल हँसकर पास बुलाती।
भोर हुई माटी के घर से......

सोंधी माटी मँहक रही है हरी-भरी अंगनाई की
याद दिलाती हर मानव को बचपन के अँगड़ाई की
छिपा रही है अब भी अपने आँचल में ममता की थाती ।
भोर हुई माटी के घर से......

•

काटने लगी चीटियाँ चिकोटी

सोये थे गुलमहोर की छाँव में, काटने लगीं, चीटियाँ चिकोटी
रोम-रोम झनझना उठा, कह रहे सभी, बात बहुत छोटी।

पलकों में गंगा उतरायी बह निकली बाँध तोड़कर
सड़कों को लहरों ने घेरा डूबने लगा बसा शहर
सागर सी भूख मचल आयी, लोग दे रहे, तोड़-तोड़ रोटी।
काटने लगीं......

हम हैं बेहाल हो चुके, उनको कुछ भी पता नहीं
बैठे हैं बन्द किए पलकें, मिट्टी का देव बन कहीं
मन ही मन झुलस रहे हम, बीछ रहे माटी में गोटी।
काटने लगीं......

बहलाता हूँ अपने को, चेहरों का रंग देखकर
कोई है बूझता पहेलियाँ, कमरे में बैठ बेखबर
कानों में बहरापन भरती है, सामने खड़े, इंजन की सीटी।
काटने लगीं......

•

जाना तो होगा ही दर्पण के सामने

कब तक कतरायेंगे रोएँगें-गाएँगें
जाना तो होगा ही दर्पण के सामने
इसीलिए पाँव लगे राहों को नापने ।।1।।
जाना तो होगा ही......

रोज-रोज छीज रही फूलों की काया
निर्मम हो बूटों ने हँसकर ठुकराया
माली ही पौंधो की शाख लगा छाँटने ।।2।।
जाना तो होगा ही......

मस्तक के ऊपर क्या पाँवों के नीचे क्या
पर्दे के आगे क्या पर्दे के पीछे क्या
साच-झूठ सब कुछ जब देख लिया आपने ।।3।।
जाना तो होगा ही......

लहर-लहर हाथ पाँव सूंघती हवाएँ
आस-पास भटक रही स्निग्ध विवशताएँ
माटी में मूँद उठे चाँदी के पालने ।।4।।
जाना तो होगा ही......

आँखों के आगे से गुजर गया डाकिया
खींच गया चिल्लाकर झीना-सा हाशिया
बदल गया शब्द-शब्द का अब तो मायने ।।5।।
जाना तो होगा ही......

•

शहर

टाइप की खट-पट खट-पट में उलझ गया है दिन
बिखरी कमरे से सीढ़ी तक तरह-तरह की पिन ।

फाइल के पन्नों में घंटा-मिनट बन्द हो जाता
कुर्सी से कुर्सी टकराती वाक् द्वन्द्व हो जाता
चपल निगाहें डायल पर जा नाप रहीं पल-छिन।

रौंद रहे हैं हाथी घोड़े खुली सड़क की छाती
लगा-लगाकर दौड़ डाकिया बाँट रहा है पाती
दरवाजे-दरवाजे बजती काल बेल ट्रिन-ट्रिन ।

आस पास चूल्हे चौके के दर्शन-पूजन झूलें
तीन हाथ की लघु क्यारी में सुमन अनगिनत फूलें
रोक रास्ता खड़ी चतुर्दिक जहरीली नागिन ।

ऊँची नज़रें भीड़ सड़क पर रंग से रंगी अटारी
युद्ध अघोषित किन्तु चल रही बरछी तीर कटारी
पैसा फेक तमाशा देखो ता-धिन ता धिन-धिन ।

•

तुम चलो

तुम चलो चरण पथ चूमेंगे
एकाकी हो सोच न करना
साथ कोटि जन डोलेंगे ।

कंटक पथ में उगे हुए हैं
किन्तु लक्ष्य क्या रहे उपेक्षित,
वैभव का पथ अपनाया है,
राष्ट्रधर्म से कर दो शिक्षित,
आज म्लान मुख जो हैं बैठे
साथ तुम्हारे झूमेंगे ।
तुम चलो चरण पथ चूमेंगे ।

चारों ओर मरुस्थल फैला
किससे क्या बोलें बतियायें ?
पर न मौन रहना स्वभाव है
गीत जागरण के ही गायें,
कण-कण से टकराकर अपने
स्वर घर-घर में गूँजेंगे ।
तुम चलो चरण पथ चूमेंगे ।

नैराश्यों के मेघ छँटेंगे
प्रगति पतंग उड़ेगी नभ में,
उमड़ेगी उत्सर्ग भावना
जगती है जिस भाँति शलभ में,
मुक्त पंखी पाँखी सा उड़कर
क्षितिज द्वार को छूलेंगे ।
तुम चलो चरण पथ चूमेंगे ।

हाथों में ले हाथ बढ़ चलें
उन्हें उठायें हैं जो नतसिर,
ले गंगाजल अंजलियों में
सौगन्धों को दुहरायें फिर,
संस्कृति, राष्ट्र और निज गौरव
कभी नहीं हम भूलेंगे।
तुम चलो चरण पथ चूमेंगे।

बन्द कपाटों के पट खोलो
देखो रवि आया है द्वारे
यह 'शैलेश' दूर से आया
बन्धु चलों संग तुम्हें पुकारे
अगणित आर्द्र कण्ठ स्वर मिलकर
भारत की जय बोलेंगे।
तुम चलो चरण पथ चूमेंगे।

•

ढोना होगा तुमको......

ढोना होगा तुमको कोमल पंखों पर अंगार,
कर्तव्यों के पीछे-पीछे चलता है अधिकार।

अंजलि फैलाकर मत मांगो जी-भर सबको बाँटो,
दूरी का आयाम बढ़ाने वाली खन्दक पाटो,
बहना होगा धीरे-धीरे बनकर सुरभि बयार।
ढोना होगा तुमको कोमल पंखों पर अंगार।

जलना होगा दीप शिखा बन अंधकार में तुमको,
सहने होंगे कठिन थपेड़े धाराओं में हमको,
उनके लिए झलकता जिनके नयनों में मृदु प्यार।
ढोना होगा तुमको कोमल पंखों पर अंगार।

बाहें फैलाकर जो आते मिल लो, मुँह मत मोड़ो,
निश्छल बनकर मुक्ता-माणिक सागर तट पर छोड़ो,
स्वीकारो सहर्ष मिल जाये यदि कण-कण का प्यार।
ढोना होगा तुमको कोमल पंखों पर अंगार।

प्यासे अधर माँगते पानी जलधर दूर न जाओ,
आर्द्रकण्ठ की करुण याचना ऐसे मत ठुकराओ
जी पाओगे जग जैसा ही कर कुत्सित व्यापार।
ढोना होगा तुमको कोमल पंखों पर अंगार।

•

आओ हम अपने को खोजें

आओ हम अपने को खोजें
चमकीले जंगल में काँस के
कब तक हम उलझते रहेंगे
बार-बार नागों के फाँस में।

बार-बार उम्र पूछते रहे
आखिर यह बतलाओ किसलिए
जहरीले पल पीकर चुपके से
हमने दिन-रात हैं जिए
बहलाते अपने दुखते मन को
उलझाकर पत्तों में ताश के।
आओ हम अपने को खोजें।

होटल के बिस्तर पर रात में
खटमल की पाँत रक्त चूसती
बल्बों से झाँक झाँक रोशनी
क्या गुजरी तन पर यह पूछती
हरियाली माँगे जाकर किससे
पियराते पात अमलताश के।
आओ हम अपने को खोजें।

खूँटों पर बँधे हुए झूमते
ग्वालों के सजे धजे जानवर
नेह बिना भेद-भाव बाँटते
अपनों को सूँघ चूम-चाटकर
आप और हम क्या हैं इसको
जान रहे लोग आस-पास के।
आओ हम अपने को खोजे।

किस पथ चलकर

हर धड़कन संग आग धधकती
किससे-किससे जा बतलाऊँ।

जिस बट पर था किया बसेरा,
शाख़-शाख़ काँटे उग आये
कब तक कोई धरा छोड़कर
नापे गगन पंखे फैलाए
पात-पात अंगारे झरते
किस तरुतल जा आज छँहाऊँ।
किससे-किससे जा बतलाऊँ।

झुलसा तन घायल मन लेकर
घूम रहा दर-दर बंजारा
नहीं सुना था प्यासे को लख
शुष्क हुयी सरिता की धारा
किस अथाह सागर में जाकर
प्यासे मन की प्यास बुजाऊँ।
किससे-किससे जा बतलाऊँ।

द्वार-द्वार पर जाकर भटके
पत्थर के पग भी सहलाए
देख विवशता अपनी, अपने
नयनों से आँसू बरसाए
ये सूनी अंजलियाँ अपनी
किसके आगे जा फैलाऊँ।
किससे-किससे जा बतलाऊँ।

जिससे भी पूछूँ मैं जाकर
सब अपनी-अपनी कहते हैं
कहता कोई भटक रहे क्यों
प्रिय तो पास सदा रहते हैं
समझ न आया किस पथ चलकर
मैं उसका दर्शन पा जाऊँ।
किससे-किससे जा बतलाऊँ।

•

नव निर्माण करें

आओ अपने कदम बढ़ाएँ, नव-निर्माण करें
करना है यदि ध्वंश तो करें खण्डहर को समतल
दें आहुतियाँ जलि अग्नि में विनशें कलुष सकल
पलकों में पलते स्वप्नों से स्वर्णिम स्वप्न झरें।
नव-निर्माण करें।

सींचे शोणित-स्वेद बहाकर अपने-अपने तन का
हरियाली चिरजीवी होवे देवोपम उपवन का
वन्ध्या शाखाओं को बिटपों से फिर अलग करें।
नव-निर्माण करें।

चलकर थकने वाले बैठें आहें भर-भर कर
मात्र चार डग ही चल पाये शेष विशाल समर
विश्वासों की पूँजी मन में उनके त्वरित भरें
नव-निर्माण करें।

मान और अपमान द्वेष सुरसुरि में तर्पण कर,
सेवा में सन्नद्ध रहें सब वैभव अर्पण कर,
जननी-जन्मभूमि के चरणो में बलिदान करें......
नव-निर्माण करें।

•

प्रिय बता दो

प्रिय बता दो तुम मुझे फिर कौन हो ?

नीम, पीपल, बेर, बट सबको निहारा
जंगली पगडण्डियों से पूछ हारा
सिर उठाये पर्वतों की छातियों में,
मस्तियो में झूमते सागौन हो
प्रिय बता दो तुम मुझे फिर कौन हो ?

छा रहा होता है जब निशि का अँधेरा
दूर दुखते पाँव से होता सबेरा
नींद से बोझिल पलक से बात करते
तुम करों पर इक गुलाबी मौन हो ।
प्रिय बता दो तुम मुझे फिर कौन हो ?

मन्दिरों में मूर्तियों का रूप धरकर
या कि सरिता में मधुर जलधार बहकर,
बाँटते, उत्ताप जलते प्राण को,
स्नेह-ममता से उछलते छौन हो......
प्रिय बता दो तुम मुझे फिर कौन हो ?

•

चेतना के बिम्ब

चेतना के बिम्ब जब-जब हृदय पट पर जगमगाये
एक संग ही अनगिनत अज्ञात चेहरे पास आये ।

है पुती कालिख किसी पर और कोई रो रहा,
एक का अस्तित्व जागा दूसरा है सो रहा,
ठीक उनके बीच आकर दीप्त-सूरज मुस्कराये ।
एक संग ही......

दमकते तन में अभी भी मृतक मन है सो रहा
कुछ नहीं मालूम इसको उस तरफ क्या हो रहा
समझ में आता नहीं है क्या करुँ यह जाग जाये......
एक संग ही.......

तप रही धरती तवे-सी जल रहा है ठाठ-छप्पर
भर रही रणचण्डिका ताजा रुधिर से रिक्त खप्पर
स्वेद डूबा गात अपना किस तरह विश्राम पाये......
एक संग ही........

देखता हूँ अकिंचन सा शून्य में सहमे अहं को
एक पल जब बन्द दृग कर ढूँढने बैठा स्वयं को
नेह पूरित हाथ कोमल पास आकर गुदगुदाये ।
एक संग ही......

●

रात भींगती दिन जलता है......

पुरवइया के आँचल में तुम पवन गन्ध बन लुप्त हो गए
अपनी क्या किससे बतलाएँ रात भींगती दिल जलता है।

धुआँ उठ रहा चौराहे पर
लोग बात करते हैं गुप चुप,
धीरे-धीरे पसर रहा है
कदम बढ़ाता अँधियारा धुप,
शांत क्लान्त मुख्र लिए गुलाबी
अलसाया सूरज ढलता है ।।1।।
रात भीगती दिल जलता है।

विहग नीड़ को लौट रहे हैं
सजा-सजा कर अपनी पातें,
बार-बार वे इस प्रयास में
जोड़ रहे हैं टूटे नाते,
छायाओं का झुण्ड पास आ
चेहरे बदल-बदल छलता है ।।2।।
रात भीगती दिल जलता है।

घिरा तिमिर दीपक लौ मचली
नभ मण्डल में छिटके तारे
किन्तु न तनिक प्रकाश आस का
आया इस दुखिया के द्वारे
दहकी पीड़ाओं से तपकर
हिम सा मन तिलतिल गलता है ।।3।।
रात भीगती दिल जलता है।

मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा

तुम मुझको जो भी दे दोगे
मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

मुरझाये ठुकराये पथ में
फिरते हैं जो मारे-मारे,
निज अंजलियों को फैलाकर
घूम रहे हैं द्वारे-द्वारे,
फूल फूल हैं काँटों को भी
लगा हृदय से प्यार करूँगा।
तुम मुझको जो भी........ स्वीकार करूँगा।

शुष्क पड़े चेहरे हरियायें
मिटे पिपासा प्यासे मन की,
जगमग-जगमग ज्योति जल पड़े
छाया अशुभ मिटे आँगन की,
आँचल में भर देना मेरे
विषम व्यथा का भार बहूँगा।
तुम मुझको जो भी........ स्वीकार करूँगा।

परिणय, प्रणय, पराजय, पीड़ा
तिरस्कार भी पाकर जग से
नभ उड़ान निर्मल जल क्रीड़ा
डिगा सकेगी क्या अब मग से,
अग्नि ज्वाल की तपन चुभन भी
हँसकर अंगीकार करूँगा।
तुम मुझको जो भी........ स्वीकार करूँगा।

कुश कण्टक हूँ निर्जन वन का
सुरभित सुमन नहीं उपवन का
है तथापि उत्कट अभिलाषा
करुँ समर्पण इस जीवन का
पर प्रयास कर समझ न पाया
कैसे अब गलहार बनूँगा ।
तुम मुझको जो भी....... स्वीकार करुँगा ।

तृण विहीन झाड़ी से शोभित
तप्त मरुस्थल की माटी में,
हिम सी सर्द कठोर अवनि पर
पथरीली निर्जन घाटी में,
जीवनदीप जलाकर सबमें
बनकर प्राणाधार रहूँगा ।
तुम मुझको जो भी....... स्वीकार करुँगा ।

•

आगे बढ़े किन्तु

आगे बढ़े किन्तु, पावों ने
चलना अस्वीकार कर दिया।

मन मुरझाया थकित हुआ तन
नयनों में आँसु भर आये,
पथ की शाखाएँ अनगिन बन
बार-बार मुझको भरमाएँ,
विषम विवशताओं ने घेरा
कुंठित असि की धार कर दिया।
आगे बढ़े किन्तु, ... अस्वीकार कर दिया।

अपनी पीड़ाओं को पीकर
गाया गीत सदा खुशियों का,
महलों से भी ऊँचा उठकर
आश्रय लिए रहे कुटियों का,
जिसे बचाए थे युग-युग से
चादर सौ-सौ तार कर दिया।
आगे बढ़े किन्तु, ... अस्वीकार कर दिया।

कल-कल छल-छल रवकर निर्झर
धार बना इस भू पर आया
सुप्त मरुस्थल में जीवन का
नन्हा सा पौधा हरियाया
नियति नटी ने छल से पथ में
दहकर भरा कगार धर दिया।
आगे बढ़े किन्तु, ... अस्वीकार कर दिया।

यह कैसी बरसात

आँक बबूल बेर हरियाये
मौन कोकिला कागा गाये,
सूखे नीम रसाल,
यह कैसी बरसात कि जिसमें
पनप रहा भ्रम जाल।

मुँह मुरझाया टेक दिये सिर
भू पर छोटे पौधे
अँखुवाये दाने न उठ सके
पड़े रह गए औंधे
हिला-हिला शाखाएँ झूमे
वट का विटप विशाल।
यह कैसी बरसात .... पनप रहा भ्रमजाल।
कागज का लेखा चिल्लाए
उत्पादन है दूना
पिचके गाल फटा कुर्ता
बतलाये सब कुछ सूना
राजकोष भर जाय भले ही
पर खाली है भाल।
यह कैसी बरसात .... पनप रहा भ्रमजाल।
जोड़-तोड़ हाँ-हाँ ना-ना की
सत्वहीन परिपाटी
एक दशक पहले जन्मी
अब घेर रही है घाटी,
लाल छड़ी जादू की करती
निशिदिन नया कमाल।
यह कैसी बरसात .... पनप रहा भ्रमजाल।

मुझको बीती बात न भूली

भूल गए, तुम सब कुछ लेकिन
मुझको बीती बात न भूली।

तिनके बिन-बिन नीड़ बनाना
फूल-पात से उसे सजाना
उंगली के पोरों सी अपनी
छोटी-सी औकात न भूली।
मुझको बीती बात न भूली।

बन्धन में बँध जाती नहरें
सरिता की लहराती लहरें
लाँघ लिया है पाँव बढ़ाकर
जीत मिली पर मात न भूली
मुझको बीती बात न भूली।

आए दूर राह से चलके
पलकों से जब आँसू छलके
थककर चूर रहा तन-मन सब
नेह भरी बरसात न भूली
मुझको बीती बात न भूली।

तुमने कर से केश सँवारे
सजे सलोने-स्वप्न कुँवारे
चन्दा तारे सब मुस्काए
वह मदमाती रात न भूली।
मुझको बीती बात न भूली।

•

व्यथा बांसुरी गूंजी

व्यथा बाँसुरी गूंजी
वृन्दावन की राधा
याद आ गयी
अनगिन गंधहीन फूलों के
इर्द-गिर्द कुछ धुंध छा गयी ।

भर उल्लास झूमता था जो
वह मन मलिन अशांत हो गया
हरसिंगार रजकण दल बल से
दुर्दिन में आक्रान्त हो गया
पूनम का शशि छिपा मेघ में
अमा निशा विस्तार पा गयी ।

व्यथा बाँसुरी..................।

शीतल पवन झँकोरे चुभते
प्रतिपल रोम-रोम सहलाकर
शिरा-शिरा उद्वेलित करती
ब्रजमाटी की स्मृतियाँ आकर
जाने किस वातायन से आ
सुप्त बीन स्वर को जगा गयी ।

व्यथा बाँसुरी...... !

हारे मन को दिया भुलावा
अब तक अधर मौन थे ओढ़े
कौंध गयी विद्युत अशांति की
असमय सोये वाद्य झिंझोड़े
यौवन की प्रतिबन्धित सांकल
फिर कदम्ब अवलब्ध पा गयी ।

व्यथा बाँसुरी..................।

निश्चल शांत सहजता खोकर
कण-कण सिहर उठा लघु क्षण में
शोणित धार उफनकर पीड़ा,
भर देती हैं सोये ब्रण में
जागीं स्मृतियाँ पुनः पुरातन
विरह वीथि का पथ बता गयी।

व्यथा बाँसुरी..................।

•

सोचो

फूल किसी ने दिया तुम्हें है हार बनाने को,
नहीं नोचकर कोमल पंखुरियाँ बिखराने को ।

चित्र बनाया था भीतों पर दिन में जले रात भर जागे,
रंग भरे चुन-चुनकर उनमें प्रतिमाओं से आशिष माँगे
क्यों निर्मम हो हाथ तुम्हारे बढ़े मिटाने को ।
फूल किसी ने दिया.............।

स्नेह दान, ममता की गठरी
सिर पर तो तुम ढो न सके हो
नवल रक्त है तन में फिर भी
लगते बेहद थके-थके हो
पूजा में जब विफल हुए चलते ठुकराने को ।
फूल किसी ने दिया.............।

सोचो दर्द तुम्हें होगा कितना उंगली दबने से,
झन्ना जातीं सभी शिराएँ कंकड़ियाँ लगने से,
रोको क्रूर कृत्य करने से मन मनमाने को ।
फूल किसी ने दिया.............।

•

ठुकराओ मत पावों से

बासी फूल समर्पित हैं पर
मत ठुकराओ पाँवों से
नहीं पता तुमको यह तन-मन
भरा हुआ है घावों से।

रोम-रोम जल रहा दीप-सा
रक्त सोख इस जीवन का
अब तो नहीं सहारा कोई
इस उदास टूटे मन का
समझौता कैसे कर ले मन
डँसते हुए अभावों से।

ठुकराओ.............।

यद्यपि आना था पाने को
फिर भी मैं कैसे आता
तुमसे तो कुछ नहीं छिपा है
औरों से क्या बतलाता
पल-पल ऊब रहा भोला मन
उलझन भरी व्यथाओं से।

ठुकराओ.............।

हैं अशीशते रोम-रोम पर
अधर मौन ही रह जाते हैं
जो कुछ भी कहना होता है
चुपके से कह जाते हैं
पोर-पोर है शूल उठ रही
शीतल-मन्द हवाओं से।

ठुकराओ.............।

हो समर्थ कर ले लो मेरा
मुझे चाहिए साथ तुम्हारा
झँझावातों से उत्पीड़ित
फिरता हूँ मैं मारा-मारा
कैसे पार करुँ मैं सरिता
टूटी-जर्जर नावों से ।

ठुकराओ.............।

•

भूलूँ किसे ? किसे अपनाऊँ ?

व्यथा बोझ लेकर कब तक मैं
इनके-उनके द्वारे जाऊँ।

कल तक यह जीवन-जीवन था
आज विष भरा गागर है,
इसीलिए तो अपनाने से
अब कतराता सागर है,
भोले मन को कब तक झूठे
रंग बिरंगे स्वप्न दिखाऊँ।
व्यथा बोझ लेकर..................।

छाया जिस अंचल से पायी
आज वही झड़ती चिनगारी,
झुलस गए सब पुष्प सुगंधित
दरक रही है सूनी क्यारी,
कब तक कागज के फूलों सँग
मैं अपना मधुमास मनाऊँ।
व्यथा बोझ लेकर..................।

वैभव के दर्पण में धब्बे
गँदले समय करों ने डाले
काम न आया उसके कुछ भी
जिसने रक्त पिला कर पाले
क्षण असंख्य गुजरे समक्ष आ
भूलूँ किसे ? किसे अपनाऊँ ?
व्यथा बोझ लेकर..................।

जो कुछ चाहा नहीं हो सका
अनचाहा अनजाना पाया
बोलें बोल न अपनेपन के
अपना कहकर जिसे बताया
है तथापि ममता उनसे भी
हृदय चीर कैसे दिखलाऊँ।

व्यथा बोझ लेकर..................।

•

आ जाते यदि मेरे बचपन

अपने इस छोटे आँगन में
घुटनों के बल गिरते पड़ते
चलता सबकी बाँह पकड़कर
जिद करता चलने की ख़ातिर
बाबा उठकर बाँह पकड़ते
दुग्ध-धवल मधुरामृत-मँहकन।
आ जाते यदि.................।

कोई गोद लिए दुलराता
कहकर बेटा बाबू भइया
हँसकर कोई गले लगाता
दूध पिलाती धवरी गइया
भोले अधरों का फिर मेरे
सभी प्यार से लेते चुम्बन।
आ जाते यदि.................।

कूद-फाँद कर शोर मचाता
मन कहता जित उत ही जाता
नदिया में नित प्रीति-प्यार के
सिर से पग तक डूब नहाता
प्रमुदित हो किलकारी भरता
झाँक-झाँक चमकीला दर्पण।
आ जाते यदि.................।

आँचल के झीने साये में
अपना मुखड़ा कभी छिपाकर
मन की खुशियाँ खूब उमगतीं
प्यारी थपकी माँ से पाकर
रात रजत की होती अपनी
दिन फिर होता कंचन-कंचन ।

आ जाते यदि.................।

•

मेरा परिचय पा जाओगे

पल भर मेरी ओर निहारो
मेरा परिचय पा जाओगे
नेह निमंत्रण कब तक प्रिय तुम
वृथा मानकर ठुकराओगे।

मेरा परिचय..................।।

सीमा रेखा खींच स्वयं ही
दूर-दूर फिरते हो मुझसे
तुम अपनी पहचान भूलकर
उलझ रहे हो इससे-उससे
है विश्वास भटककर दिन-भर
अपने घर में आ जाओगे।

मेरा परिचय..................।।

अंधकार की प्रबल शृंखला
बाँध रही है तन को-मन को
झिल्ली की झंकार गुँजाती
स्पन्दनहीन रिक्त आँगन को
जागृति दीप जलाने वाले
आखिर कब तुम आ पाओगे।

मेरा परिचय..................।।

कूल कगार सजाती सरिता
सिकता वारि कलुष को पीती
उन्नत द्रुम उन्मत्त झूमते
कौन सुने किस पर क्या बीती
जग भूले तो भूले तुम भी
कैसे मुझे भुला पाओगे।

मेरा परिचय..................।।

•

मेघ फिर आना

नेह का पाकर निमन्त्रण
मेघ फिर आना भूल मत जाता।

जेठ की दहकी दुपहरी
ने किया है मान मर्दन,
कुछ धुआँ में कुछ अगन में
दह हुआ है श्याम कंचन,
कल कलुष छायी उसे
आ पास बिखराना।

मेघ फिर आना............।

भोर बीती साँझ आयी
रात का पहरा पड़ा
किस तरह बीते निशा यह
घोर असमंजस खड़ा
सूखती शाखें बकुल की
सींच सरसाना।

मेघ फिर आना............।

राम गिरि के इस शिखर पर
यक्ष एकाकी बसा
श्राप की अभिवंचना से
विवश एकाकी फँसा
हो सके तो पास आकर
माथ सहलाना।

मेघ फिर आना............।

जल रहा है वृक्ष भू का
है निराशा व्यापती
तृषित चातक सी गगन की
ओर अपलक ताकती
सिन्धु से ले कण अमिय का
शीघ्र बरसाना

मेघ फिर आना............।

•

अभिलाषा

अभिलाषा है जग जाये फिर सोया हुआ चिराग,
किन्तु तीलियाँ सील गयी हैं पीछे पड़ा अभाग।

वर्तमान का लेखा-जोखा करना है मुश्किल
लिपे पुते कागद की छाती जाती है छिल-छिल
जाँय किधर मौसम मनमाना पथ भी है पंकिल
हवा हुयी गुम, पत्तियाँ मिलता नहीं सुराग।
अभिलाषा है..................।

कभी-कभी मन चुपके-चुपके स्वप्न सजाता है
उन्हें पकड़ने को मुट्ठी में हाथ बढ़ाता है
घायल हो जाते पग मेरे पथ की ठोकर से
काजल की कोठी से बचकर आया कौन निदाग।
अभिलाषा है..................।

चढ़ने लगा रंग मेंहदी का उजली पाँखों पर
लगे झूलने अंगारे अब कोमल शाखों पर
अलग-अलग हर कोई घर में अपना राग अलापे
कोई गाए दरबारी तो, कोई बादल राग।
अभिलाषा है..................।

खट्-खट् की आवाज तोड़ती पसरा सन्नाटा
दबी-दबी हुंकारें पूरा करती है घाटा
किससे पूछे ? किसे बताएँ ? बात हुयी क्या किससे?
मची हुयी है गलियों-गलियों में अब भागमभाग।
अभिलाषा है..................।

•

जब निराश मन होता मेरा

जब निराश मन होता मेरा
पास पसरता गहन अँधेरा।

रात्रि कालिमा में छिप छिप कर
भयाक्रान्त करतीं छायाएँ,
पल-पल रूप बदलकर अपना
घनी घटाएँ शोर मचाएँ,
दुर्दिन देख दुखी करने को
एकाकीपन डाले डेरा।

नीर नयन से बहे निरन्तर
पग होते मन-मन भर भारी
करते हैं उपहास स्वजन भी
बजा-बजा कर्कश करतारी,
जननी-जनक बन्धु तुम मेरे
एकमात्र हो विवश-बसेरा।

बारम्बार पूछ जन-जन से
हारे हेर-हेर पथ अपना
असमय काल ग्रास बन बैठा
बिखर गया सब स्वर्णिम सपना,
दर-दर आकुल होकर डोलूँ
नाचूँ जैसे साँप-सपेरा।

उत्कंठाएँ पंख लगाकर
उड़ती हैं उन्मुक्त गगन में,
सहता हूँ झंझा के झोंके
जैसे कंचन तपे अगन में,
दिव्य-दृष्टि से अवलोकों तुम
छा जायेगा शुभ्र सबेरा।

आओ मिलकर नीड़ बनाएँ

आओ मिलकर नीड़ बनाएँ अम्बर के नीचे
उनकी बात भुला दो रहते जो खंजर खींचे ।

कैसे पीर कहोगे उनसे जिन्हें लगाव नहीं है
हमसे भौंहें तान हमेशा रहें अधर भीचें ।

तरुणाई की सीमा रेखा होती है अनदेखी
बहुत दिनों की मैली चादर जुगुत लगा फींचे ।

उसे झुलसता देख सकोगे बेच अधिक हाथों में?
शोणित धार बहाकर जिस उपवन को तुम सींचे।

•

गन्ध बनकर साँस में बस जाएँगें

है असम्भव भूल जाना साथ है यह चिर पुराना
दूर वे क्षण आप क्या कर पाएँगे
गन्ध बनकर साँस में बस जाएँगें।

दूर होगा जब झमेला उस समय होकर अकेला
खोलकर पट विगत स्मृति के देख लेना प्रणय बेला
हास बनकर अधर पर मुस्काएँगे।

तुम स्वयं में बन कहानी हो बिताते जिन्दगानी
कर सकोगे है असंभव इस नयन से बेईमानी
रुप बनकर दृष्टि में छा जाएँगे।

पाँव जब रुक जायँ थककर, अटक जाए पथ भटककर
छोड़कर संकोच सारा हाथ लेना थाम बढ़कर
शब्द बनकर दिशि-विदिश लहराएँगे।

आज पूनम पास है, पर जब कभी घेरे अमावस
पाँव नंगे आ सकेंगे बस बँधाने तुम्हें ढाँढ़स
रोशनी के पुंज बन बिछ जाएँगे।

•

मत रोक पवन पग मेरा

जाने दे उनसे मिलने को
उन बिन लगे अंधेरा
मत रोक पवन पग मेरा।

बिछुड़ गए कुछ चूक हो गई
मन ही मन पछताये,
मेरी अखियाँ दर्शन के हित
नित ही नीर बहायें
बारी-बारी आ विपदाएँ
डाल रही हैं घेरा।

मन में बसी मोहिनी सूरत
ढूँढे द्वारे-द्वारे
बना बावरा इनसे उनसे
पूछूँ साँझ-सकारे
नगरी-नगरी गली-गली में
रोज लगाकर फेरा।

गरज रहे हैं नभ में बादल
काले-काले छाए
दुर्दिन में उस स्नेहिल कर की
बार-बार सुधि आए
निबल जानकर मुझको सबने
आकर डाला घेरा।

सुविधाएँ शूलों सी चुभतीं
बींध रही हैं तन-मन
मरघट-सा सूना लगता है
अपना ही घर-आँगन
पीड़ा दूनी कर देता है
सुखमय रैन बसेरा।

देना हो तो दे दो मुझको

देना हो तो दे दो मुझको जीवन बन्धन का,
हृदय नहीं यह बनना चाहे प्रेमी निर्जन का।

रूप नहीं, रंग नहीं, प्रीति चाहिए मुझको
एक नहीं सौ बार करूँगा, यही विनय मैं तुमको
सम्बन्धों में दो सौरभ मलयगिरि चन्दन का।

हार पहनकर काँटों का भी इठलाता घूमूँगा
धूल धूसरित कंकड़ पत्थर अधरों को चूमूँगा
नहीं चाहिए पारिजात अब सुरभित नन्दन का।

लोहे की हथकड़ी बेड़ियाँ आभूषण अपना
अलसायी पलकों में जगता सूरज सा सपना
झंकृत कर दो मन में स्वर वीणा के स्पन्दन का।

बाटूँ खुशियाँ सबको भरकर झोली की झोली
साथ लगा दो मेरे भूखे नंगो की टोली
अभिलाषी अब नहीं रहा मन चाँदी कंचन का।

छोड़ घरौंदा मिट्टी का मैं स्वर्ग न जाऊँगा
स्वर में इनके मिला-मिला स्वर रोऊँगा गाऊँगा
धरतीय ही मिलता मुझको सुख अभिनन्दन का।

•

उलझ गयी जीवन की डोरी

सुलझाता हूँ बार-बार में
उलझ गयी जीवन की डोरी।
आँख खुली खुशियाँ छायी थी
मेरे घर में कोने-कोने
चन्दन-कुमकुम रोली-अक्षत
फूल भरे थे दोने-दोने
ठोकर दे छितराया सबकुछ
मृदु मन्थरा बनी घरफोरी।
हाथ जोड़कर विनय किया पर
सुनती नहीं एक कैकेयी
बरस रही निधरक विष धारा
वाणी रही अमिय रस सेई
हँसते-हँसते राम बन गए
रवि से तमस करे बरजोरी।
हुआ धूलिकण पर्वत जैसा
स्वर्णहार बन सर्प काटता
कष्ट पूछने आता जो भी
बोटी-बोटी मुझे बाँटता
कड़वे मीठे अनुभव आकर
भर देते मेरी लघु झोरी।
तन है विवश किन्तु मन चंचल
नैन निरखते कोरी डेहरी
कैसे किसे खोल दिखलाऊँ
चोर लटी अन्तर में गहरी
कोई तो बतलाए राहें
भटक रही है अब मति मोरी।

●

क्यों विश्वास नहीं कर पाए

तुमने सारा बोझ ले लिया अपने ही कन्धों पर
क्यों विश्वास नहीं कर पाए जुड़ते सम्बन्धों पर।

था मैं कल तक बहुत अपरिचित किन्तु आज परिचित हूँ,
कर की रेखाओं जैसा ही दृष्टि बीच अंकित हूँ,
लगा रहे हो प्रश्नचिह्न क्यों मृदु पाटल गन्धों पर।

सरिता का जल कभी किनारों को छूकर बहता है,
और कभी कुछ दूर खिलखिला कर हँसता रहता है,
कभी लहरती हैं धाराएँ उन्नत तटबन्धों पर।

प्रस्तर-प्रतिमा बनकर जीना संभव हो पाएगा ?
स्वयं तुम्हारा अहम् तुम्हारे मन से टकराएगा,
लोग उंगलियाँ दिखलाएँगे स्नेहिल अनुबन्धों पर।

जो कहना था मुझे कह दिया और नहीं कुछ कहना,
यह विलगाव नहीं अच्छा है अगर संग है रहना
रंचमात्र तो दृष्टि फेर दो भूले सौगन्धों पर।

•

पीड़ाएँ पीकर पलता हूँ

अंधकार से आवृत धरती पर
पग-पग रखकर चलता हूँ
पीड़ा ही थाती है मेरी
पीड़ाएँ पीकर पलता हूँ।

मिली वंचनाएँ जीवन में
भूखी सदा रही अभिलाषा,
जब भी पूछा राह किसी से
सबने दी नूतन परिभाषा,
अरे हिमालय मैं भी नित प्रति
तुझ जैसा ही तो गलता हूँ।

आज नहीं तो कल मुझपर भी
लहरेगी तरुवर की छाया,
रस की गागर में डुबकी ले
पूर्ण तृप्त होगी यह काया,
आश्वासन के मृषा सलिल से
निज मन को क्षण-क्षण छलता हूँ।

साथ न कोई आया मेरे
एकाकी हूँ लक्ष्य नापता,
सागर की उत्ताल तरंगों
से कर फैला प्रीति माँगता,
नभ मण्डल के उदिय सूर्य सा
धक-धक धधक-धधक जलता हूँ।

साध बहुत थी

बुला तुम्हें
मैं रात सो गया था रोकर-गाकर।

लहराती उमंग मिलने की
श्लथ होकर बैठी,
हूक हृदय में शल्य शूल बन
अनजाने पैठी,
कब तक बहलाता पिपासु को
मृगजल दिखलाकर।

मन का आँगन नैराश्यों के
बादल घेर रहे,
थके नयन फिर भी तेरा पथ
अपलक देख रहे,
हरित-पौध सिर लगी झुकाने
क्रमशः मुरझाकर।

साध बहुत थी साथ तुम्हारे रह लूँ
पल दो पल,
बार-बार पग रुक जाते पर
कहता कोई - 'चल'
पीर जगातीं मस्त हवाएँ
मस्तक सहलाकर।

तुम ही जीवन धन
तुमको ही सब कुछ है अर्पण,
एक बार दिखला दो क्या हूँ
ओ मेरे दर्पण !
पल भर को तो मुझे उठा लो
बाहों में आकर।

●

वाणी मौन भले हो जाए

वाणी मौन भले हो जाये
कवि अपने अन्तर में गाये।
तुम बाँधो पर मन का बँधना
संभव हो न सकेगा
बन अदृश्य निर्झर
प्रस्तर खण्डों के बीच बहेगा
अप्रतिहत होगी उसकी गति
कोई जाये कोई आये।
कोमल क्रोड़ बीच निद्रा के
जब यह सारा जग रहता है
कण-कण की पीड़ा अनुभव कर
एकाकी साधक जगता है
करता है अविराम साधना
झिलमिल जीवन-दीप जलाये।
है जब-जब प्रतिबिम्बित होता
चित्र समय का उसके उर में
रोक रही होतीं दीवारें
पर न उलझता है नूपुर में
दृष्टि उपेक्षित कर दे किसको
सब अपने हैं नहीं पराये।
क्षुधा तृषा से नेह तोड़कर
कंटक-पथ का हो अनुगामी
नमन भारती के चरणों में
करता है वह हो निष्कामी
मन्द्र-जलद रव कर्ण कुहर से
क्षण-क्षण में आकर टकराये।

•

नहीं पराए से अपनो से

अपनी बाँह छुड़ा हर साथी
मुझसे दूर चला जाता है,
भोला भाला यह मन अपने को
तब एकाकी पाता है।

जीवन के बीते पृष्ठों को
उलट-पुलट कर देख रहा हूँ,
हँसते हुए सभी पथ चलते
आज तलक मैं नहीं ढहा हूँ
प्रश्न पूछकर अहं स्वयं का
धरती पर सिर टकराता है।

आश्वासन हैं सभी बाँटते
पीर न सुनता कोई मेरी
मुझसे विलग खड़ी परछाईं
लगती जैसे छाया तेरी
नहीं पराए से अपनों से
मानव सदा ठगा जाता है।

बार-बार बिखराव हो रहा
नींव ढह रही विश्वासों की
यद्यपि आवागमन न बाधित
इस तन में चुभते सांसों की
इस मिथ्या अपनत्व भाव पर
भी मन क्यों यह इठलाता है।

•

तुम बिन

तुम बिन मेरे प्रियतम सूना जीवन है
बिन बादल बरसे ही भींगा ये मन है ।

चैन नहीं मिलता है घर हो या पथ हो
सरस फुहारों बिन यह सूखा उपवन है ।

माथे की बिन्दिया से झरती चिनगारी
बुझा-बुझा मन अपना मृत प्राय तन है ।

सर्द हवाएँ आकर साँकल खटकाएँ
आशा को पर लगते बढ़ती धड़कन है ।

जिधर-जिधर पाँव गए घूरती निगाहें
गलियों में सर्पों के बिछे हुए फन हैं ।

दूर-दूर तक दिखता सूनापन नभ का
रुनझुन सुन पायल की बढ़ती उलझन है ।

•

ये हवा कैसी चली

ये हवा कैसी चली
झूमते उन्मत्त सब हैं
रंग-न्हायी हर गली।

प्रात का सूरज जगा
भाग धरती का जगा
तालियाँ पत्ते बजाते
गा रही है हर कली।

रात की ठण्डक गयी
छा गयी सिहरन नयी
दोस्ती के हाथ जैसी
धूप लगती है भली।

आम्र की नव मंजरी
मधुरिमा से है भरी
कूंकती कोयल सुरीली
है बहुत ही मनचली।

फूल सरसो के खिले
बालियाँ मिलती गले
बाँह में घट थाम अपने
नायिका पनघट चली।

गूँजते गुन-गुन भ्रमर
तैरती स्वर की लहर
शाख पर अंगार झूले
शाम असमय ही ढली।

●

जागीं स्मृति में बीती घड़ियाँ

पृथक पुष्प होता शाखा से,
टूट बिखर जाती पंखुड़ियाँ,
घाव हरा हो जाता फिर से,
जागीं स्मृति में बीती घड़ियाँ,

कोहिनूर दो टूक हो गया
सिंहासन जा गिरा उदधि में,
पतनोन्मुख उत्थान हो गए
घटा, बहुत कुछ अल्प अवधि में,
उतर शीश से खाकर ठोकर
धूल घूसरित हुईं पगड़ियाँ ।

चलना कल तक जिन्हें न आया
आज उड़ रहे अन्तरिक्ष में,
फंदा डाल गले संस्कृति के
लटकाते खोखले वृक्ष में,
गलने लगा धूप में लोहा
सबल हो गईं सड़ी लकड़ियाँ ।

होड़ लगी है देखें किसके
घर में वृहद शक्ति संचय है,
सिद्ध कर रहे गाली देकर
अहंकार सबसे निर्भय है
जीवित मानव शव बन बैठा
साँस ले रहीं मरी चमड़ियाँ ।

पुखरे गिरि धारण करते थे,
पी जाते थे अम्बुधि खारा
सन्तानें अस्तित्वहीन बन
ढूढ़ रही हैं सबल सहारा
पगडण्डी को नाप रही हैं
हाथों में ले लेकर छड़ियाँ ।

नित्य स्वच्छ करता हूँ श्रम से
दीवालें बैठक की अपने
सहमी-सहमी प्रगति खड़ी है
देख पंथ में बोझिल सपने
बार-बार जाले आकर्षक
बुन देती हैं धूर्त मकड़ियाँ ।

•

बन्धु हमारे हैं

ये बेचारे हैं जो
विपदाओं के मारे हैं
इनके आसमान में भी तो
चाँद सितारे हैं।

आश्रयदाता वन, पर्वत हैं
या फिर बाग बगीचे
जाड़े की रातें कटती हैं
बट, पीपल के नीचे
पलते इनकी आँखों में
सपने रतनारे हैं।

है विपन्नता रोम-रोम में
धैर्य नहीं कुछ कम है
जीवन का आधार प्राणदा
नित्य नियम से श्रम है
अपने वृद्ध पिता-माता के
सबल सहारे हैं।

हरिजन, गिरिजन कुछ भी कह लो
है सब कुछ स्वीकार
मानव हैं यह स्पष्ट सत्य है
इनको भी दो प्यार
मत अपमानित करो इन्हें
ये बन्धु हमारे हैं।

•

आना मेरे पास

पथ पर चलते-चलते जब
बिखरे मन का विश्वास,
आना मेरे पास।

लक्ष्य सिद्धि हित श्रम कठोर
सबको करना पड़ता है
बाधा बनकर कोमल पग में
काँटा भी गड़ता है
साधक विपदा से टकराना
होना नहीं निराश।
आना मेरे पास।

बसी हुयी है सुखद मनोहर
घाटी गिरि के ऊपर,
दुर्लभ दृश्य दिखेगा कैसे
बैठै-बैठे भू पर,
आगे बढ़ो सजोकर साहस
मत छोड़ो तुम आश।
आना मेरे पास।

दीप-दीप कह देने से ही
दीप नहीं जल जाता
बाती तेल योग कर कोई
लौ से उसे जलाता
तभी तिमिर के कक्ष बीच यह
जगमग करे प्रकाश।
आना मेरे पास।

गीता के गीतों में सारी
रीति-नीति है अंकित
वीरों का यश युग के
प्रस्तर-खणंडों पर है टंकित
संशय तनिक न करना भइया
पूरी होगी आस।

आना मेरे पास।

सत्य मार्ग पर चरण बढ़ें
प्रतिपल प्रयास यह करना
बने रहो उपकारी जैसे
कोई बहता झरना
मेरे अंश शुभ्र हो उतना
जितना श्वेत कपास।

आना मेरे पास।

•

सो लेने दो मुझको जी भर

जगते हुए बहुत दिन बीते
कड़वी यादों के रस पीकर,
अभी-अभी तो पलक झँपी है
सो लेने दो मुझको जी भर

पत्थर के होठों से जिस दिन
देवी ने वरदान दिया था,
समझ न पाया मुझको उसने
यह कैसा सम्मान दिया था
लहूलुहान हो गए हैं पग,
नाप रहा हूँ गली शहर की
सुलग रहा है अन्तर पल-पल
दर्द सालता भीतर-भीतर।

याचक-सा झोली फैलाकर
प्रीति माँगता हूँ जा घर-घर,
रोज शाम को जब जल जाते
हैं दीपक देहरी-देहरी पर
छोटे-बड़े प्रश्न सब मिलकर
पंक्तिबद्ध आगे आ जाते
कोंच-कोंच कर पूछ रहे हैं
क्या करना है तुमको जीकर।

चीख़ पुकार तड़पनें सुन-सुन
कानों के पट हैं झन्नाते
उनको क्या अन्तर पड़ता है
जो अपनी ही धुन में गाते
बनी विवशता निर्वसना अब
है भूतल पर माथ पटकती
ढाँक रहा हूँ बदन रात का
दिन के टुकड़े-टुकड़े सीकर।

हम सब मिलें, एक हो जाएँ

आओ दीवारों को तोड़ें
हम सब मिलें एक हो जाएँ,
पछुआ हवा बदलती करवट
छायी फिर गम्भीर घटाएँ।

ऊँच-नीच का भेद भुलाकर
नित प्रति सबकी प्यास बुझायें
सागर के आँचल में जैसे
एक रूप होतीं सरिताएँ
बैठें पास दुराग्रह तजकर
सुख-दुख अपना सुने सुनाएँ।

साहस की सम्पत्ति सँजोकर
नौका तिरती लहर-लहर पर
दूर कहीं घड़ियाल जागकर
सूचित करता प्रहर-प्रहर पर
राष्ट्र अस्मिता रहे अखण्डित
ऐसी ही कुछ युक्ति लगाएँ।

निर्भय होकर सम्मुख जाएँ
समरांगण हो या बलि वेदी
वह इतिहास पृष्ठ बन चमका
जिसने अपनी आहुति दे दी
पलकों ने जो स्वप्न सँजोए
उन्हें आज साकार बनाएँ।

जड़ें वृक्ष की देती रहतीं
पत्ते-पत्ते को हरियाली,
शोभा द्विगुणित तन की होती
लदती फल-फूलों से डाली,
हम आपस के भेद-भूलकर
बनें विटप की ही शाखाएँ।

ओढ़ें कितनी मर्यादाएँ

अपने इन अशक्त कन्धों पर
ओढ़ें कितने मर्यादाएँ।
सूखे अधर न हिलना चाहें
कैसे गीत ख़ुशी के गाएँ।

रोज-रोज मेरे दरवाजे
आ कोई देता है दस्तक,
किससे कहें विवशता अपनी
झन्ना जाता उलझा मस्तक,
सुनने वाले नहीं जहाँ पर
किसको जाकर व्यथा सुनाएँ।

जब तक शोणित बहा धमनियों में
अजस्र रव करता कल-कल
ले अबाध गति बढ़े चरण तब
चलते रहे रुके बिन प्रतिपल,
पर न आज होती कुछ इच्छा
बीती बातें क्या दुहराएँ।

इनकी-उनकी सुना, न माँगा
अपने लिए किसी से कुछ भी
सुख को जितना अच्छा समझा
उससे अधिक संजोया दुख भी
रौंद उठीं कठोर कदमों से
फूलों-सी कोमल आशाएँ।

अश्रु पोछने बढ़े हाथ कुछ
पलकें भय से बन्द हो गई
लोगों ने यह अर्थ लगाया
आखें पा विश्राम सो गईं
दूर हुए देकर आश्वासन
जैसे मिटती-सी छायाएँ ।

पयस्विनी के पावन जल से
सिंचित पोषित लघु प्रतिमाएँ,
चन्दन-पुष्प भले ही पालें
बाँटेंगीं क्या विषम व्यथाएँ
बार-बार 'शैलेश' मन कहे
विश्वसनीय नहीं गाथाएँ ।

•

आज बरसा मेह

थम गया युग मुट्ठियों में, आज बरसा मेह,
हो गयी गीली अचानक, भरभराती रेह।

तप रही थी दुपहरी, थी धूप मनमानी हुई,
जब हवा झुरकी अषाढ़ी, नम हुयी पानी हुई,
पत्थरों की गोद से बहता पिघलकर नेह।

समय का संयोग था जब रुक्षता छायी रही,
कुमुदिनी कर बन्द पाँखें स्वयं शरमायी रही,
निखर आयी हो गया सद्यः नहायी देह।

जुट गए तिनके मिला अवलम्ब बन्धन बँध गए
डगमगाते पाँव धरती पर पड़े फिर सध गए
बन गया क्षण में छबीली प्रीति का नव गेह।

सुप्त आशा ने पसारे पंख छूने को गगन
इन्द्रधनुषी स्वप्न में खो, हो गया है मन मगन
स्वर्ण रज सी है दमकती, मलिन पथ की खेह।

• • •